International Journal of Humanities and Education Research 2024; 6(2): 304-307

ISSN Print: 2664-9799
ISSN Online: 2664-9802
IJHER 2024; 6(2): 304-307
www.humanitiesjournal.net
Received: 13-09-2024
Accepted: 17-10-2024

डॉ0 राजकुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग
जनता विद्या मन्दिर गणपतराय रासीवासिया महाविद्यालय, चरखी दादरी, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 राजकुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग
जनता विद्या मन्दिर गणपतराय रासीवासिया महाविद्यालय, चरखी दादरी, हरियाणा, भारत

प्रहलाद सिंह राठौड़ के 'शेषयात्रा' कहानी संग्रह में सामाजिक यथार्थ

डॉ0 राजकुमार

DOI: https://www.doi.org/10.33545/26649799.2024.v6.i2d.272

सारांश
कुंठा एक मानसिक विकृति है, जो मनुष्य को अस्वाभाविक एवं चिड़चिड़ा बना देती है। जीवन में बार–बार असफल होना सपनों का साकार न होना मनुष्य को कुंठित बना देता है। ऐसे व्यक्ति का व्यवहार असामान्य हो जाता है। ऐसा व्यक्ति अपना जीवन सहज एवं स्वाभाविक रूप में नहीं जी पाता। उसके मन में परिवार और समाज के प्रति आक्रोश उत्पन्न होता है। कथाकार राठौड़ जी ने अपनी कहानियों में इस समस्या को दर्शाया है।

कूटशब्द : साहित्य, समाज, परिवर्तनशील, कसौटी, धरोहर

प्रस्तावना
साहित्य और समाज का बहुत गहरा सम्बन्ध है। साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब कहा जाता है। साहित्य समाज की ही उपज है। साहित्यकार समाज से ही अपना अनुभव और रचना के लिए कच्ची सामग्री ग्रहण करता है। साहित्य समाज को प्रभावित करता है और समाज साहित्य को गति प्रदान करता है। साहित्यकार समाज में घटित होने वाली हर घटना को साहित्य में व्यक्त करता है। समाज साहित्य का स्त्रोत है। समाज से ही साहित्य को आधार मिलता है और इसी आधार पर ही साहित्यिक कृति का निर्माण होता है।
समाज निरन्तर परिवर्तनशील है और जो साहित्यकार इस परिवर्तन को समझ कर उसे साहित्य में व्यक्त करता है। जो साहित्यकार अपने समाज व युग से परिचित नहीं होता। उसका साहित्य ज्यादा सफल नहीं होता। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और साहित्य एक सामाजिक संस्था है। इस प्रकार कोई भी साहित्यकार, लेखक या कलाकार बाद में होता है। पहले एक सामाजिक प्राणी होता है। साहित्यकार समाज में जो कुछ देखता है, अनुभव करता है, उसे चिंतन शक्ति की कसौटी पर परख कर अपने साहित्य में चित्रित करता है। साहित्य समाज में परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम है। साहित्य समाज की अमूल्य धरोहर है।
कथा–साहित्य में समाज के सभी पक्षों जैसे वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, मनोविज्ञान आदि का वास्तविक चित्रण बड़े ही सशक्त रूप में मिलता है। एक जागरूक कहानीकार समाज का इन्हीं विभिन्न आयामों की कसौटी पर सामाजिक यथार्थ का चित्रण करता है। 'शेषयात्रा' कहानी संग्रह में चित्रित सामाजिक यथार्थ के विभिन्न आयामों का विवेचन इस प्रकार है–

वैयक्तिक यथार्थ
व्यक्ति समाज की सबसे छोटी ईकाई है। वह समाज का केन्द्र बिन्दू है। जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के अस्तित्व को ध्यान में रखते हुए आचरण करता है तो समाज का आविर्भाव होता है। व्यक्तियों के समूह से ही समाज का निर्माण होता है। समाज हमेशा परिवर्तनशील रहा है। परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है। समाज हमेशा परिवर्तनशील रहा है। परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है। इस परिवर्तनशीलता से माननीय संवेदनाओं का बदलना स्वाभाविक है। आज व्यक्ति का दृष्टिकोण समिति हो गया है। वह सिर्फ अपने तक ही सिमट कर रह गया है। वह सिर्फ अपने सुख के लिए सोचता है और इसी में प्रयासरत रहता है। उसकी इस स्वार्थी मानसिकता ने उसे अनेक विषमताओं से ग्रस्त बना दिया है। वह इन समस्याओं में फंसकर रह गया है। उसकी चिंतनशीलता क्षीण होती जा रही है।
जीवन की अत्यधिक व्यवस्था, अधूरी आकांक्षाएं, व्यक्ति के जीवन में घुटन, कुंठा, निराशा, तनाव, सहमापन और आत्महत्या जैसी भंयकर समस्याओं को जन्म देती हैं। जिनके कारण मनुष्य का जीवन

कष्टकारी हो गया है। ये समस्याएं व्यक्ति को काष्ठ–घुन की तरह खाकर अन्दर से खोखला बना देती हैं। लेखक ने –शेषयात्रा' की कहानियों में इस तरह की समस्याओं का चित्रण किया है।

कुंठा

कुंठा एक मानसिक विकृति है, जो मनुष्य को अस्वाभाविक एवं चिड़चिड़ा बना देती है। जीवन में बार–बार असफल होना सपनों का साकार न होना मनुष्य को कुंठित बना देता है। ऐसे व्यक्ति का व्यवहार असामान्य हो जाता है। ऐसा व्यक्ति अपना जीवन सहज एवं स्वाभाविक रूप में नहीं जी पाता। उसके मन में परिवार और समाज के प्रति आक्रोश उत्पन्न होता है। कथाकार राठौड़ जी ने अपनी कहानियों में इस समस्या को दर्शाया है।

'समहार' कहानी में प्रेम बाबू इस समस्या से ग्रस्त है। वे अपना सारा जीवन मेहनत और ईमानदारी से काम करने लगाते हैं, लेकिन ठेकेदार खन्ना उन्हें रिश्वत रूप में टी.वी. देकर उनकी सारी मेहनत और ईमानदारी पर पानी फेरना चाहता था – ''प्रेम बाबू उठकर बाहर आ गए। उन्हें अजीब–सा महसूस होने लगा था। खन्ना ने अपने अहसान तले दबाकर इस तरह उनके जमीर और गरीबी का मखौल उड़ाया था। यह उनके हृदय में डंक की तरह चुभने लगा।''[1]

''किन्तु आज ठेकेदार खन्ना ने उनकी सारी ईमानदारी और निष्ठाओं को दबा दिया था, जो उन्होंने पूरी सर्विस में नहीं किया, वह आज खन्ना ने कर दिखाया था। प्रेमबाबू सोच–सोच कर भीतर ही भीतर सुलगने लगे थे।''[2]

मनुष्य कभी–कभी अपने किए कार्य के द्वारा भी कुंठा का शिकार हो जाता है। 'जुआरी' कहानी में प्रकाश ऐसा की पात्र है, जिसे जुए की लत पड़ी है। जिसके कारण उसकी पत्नी कमला झुंझला उठती है और उसे समझाती है। इस पर प्रकाश को अपने काम पर शर्मिन्दगी महसूस होती है– ''हा कमला, मुझसे भूल हो गई, दोस्त ऑफिस से ही साथ लग गए थे। फिर जब मेरी जेब खाली नहीं हो गई, उठने ही नहीं दिया। क्या करूं, मेरा तो भाग्य ही खोटा है। एक जीतता हूँ तो दस हारता हूँ। फिर खोये हुए को पाने के लिए पास ही सब कुछ गँवा बैठता हूँ।'' – आगे से ऐसा नहीं होगा कमला।''[3]

इसी तरह 'यादों का आभास' कहानी में पंकज भी इस समस्या से ग्रस्त है। उसने कभी–भी अपने पिता को परवाह नहीं की उनकी हर अच्छी बुरी का विरोध करता रहा लेकिन आज जब उसका पिता इस दुनिया में नहीं रहा तो उसे उनकी जरूरत का अहसास हो रहा है और अपने व्यवहार पर पछतावा हो रहा है – 'पंकज का हृदय पश्चाताप की आँच में तपने लगा था, उसने तो पिताजी द्वारा किए गये किसी कार्य में मन से सहयोग नहीं दिया था। गृहस्थी का काम हो या परिवार के किसी सदस्य की हारी–बीमारी, वह तो हमेशा दूर खड़ा तमाशा देखता रहा था। पिता जी अकेले ही जुझते रहते थे ओ आज, एक ही दिन में ऐसा लगने लगा है जैसे जिम्मेदारी के बोझ से उसके कंधे झुक गए हैं। कितना अकेला और बेसहारा हो गया था वह !..... ।''[4]

अतः स्पष्ट है कि कुंठा मनुष्य को विकृत तथा अस्वाभाविक बना देती है। यह एक भयंकर समस्या है, जो हीन–भावना जैसी अन्य समस्याओं को जन्म देती है।

घुटन

आज के बदलते परिवेश के कारण मानव सम्बन्धों में काफी बदलाव आ गया। जिसके कारण घुटन जैसी समस्या व्यक्ति की नियति बन गई है। व्यक्ति अपने जीवन में अनेक इच्छांए रखता है। लेकिन जब किसी कारण से ये इच्छाएं पूरी नहीं हो पाती तो व्यक्ति दुखी होता है। जिससे उसके अन्तर्मन में संघर्ष चलता रहता है। संघर्ष के बावजूद भी जब लक्ष्य प्राप्त नहीं होता है, तो यही मनःस्थिति उसके निरन्तर सालती रहती है। जिससे व्यक्ति के अन्दर घुटन की स्थिति पैदा हो जाती है। कहानीकार ने इस समस्या को बड़े स्टीक रूप में प्रस्तुत किया है।

'शब्दों की पीड़ा' कहानी में श्याम बिहारी कैंसर से पीड़ित है। लेकिन फिर भी वे जीवन की आस से जूझ रहे थे। बिमारी की वजह से श्यामबिहारी का घूमना–फिरना बंद हो गया था। वे एक कमरे में ही सीमित होकर रह गए थे। ऐसी स्थिति में टूट गए थे और ऊपर से बेटी–बहुओं का उपेक्षित व्यवहार ''कुछ दिन की बीमारी को तो सभी सह लेते हैं। बीमार के साथ सहानुभूति भी रखते हैं। सेवा–टहल भी अच्छी हो जाती है। किन्तु लम्बी और कभी न मिटने वाली बीमारी से सभी उकता जाते हैं। दूसरे तो दूसरे स्वयं बीमार के प्रति। सहानुभूति और हमदर्दी नफरत और उपेक्षा में बदल जाती है। सभी रोगी से कटे–कटे, दूर–दूर रहने लगते हैं। श्यामबिहारी भी ऐसा महसूस करने लगे थे। पर सहने के अलावा और कोई चारा भी तो नहीं था।''[5]

वास्तव में घुटन जैसी समस्या ने आज मनुष्य को अपने शिंकजे में बुरी तरह से कस लिया है। यह समस्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

निराशा

निराशा एक मानसिक रोग है। यह व्यक्ति के अन्दर आत्मविश्वास की कमी से उत्पन्न होता है। मानव की अनेक डच्छाएँ होती हैं। जिनको पूरी करने में पूर्ण रूप से प्रयासरत रहता है। लेकिन जब वे पूरी नहीं होती तो उसकी विफलता निराशा को जन्म देती है। निराशा ग्रस्त व्यक्ति वर्तमान की अपेक्षा भविष्य के बारे में अधिक सोचता है। राठौड़ जी इस मनः स्थिति का यथार्थ चित्रण अपनी कहानी में किया है।

'कांकड़'पर आकर गंगा ने निगाह भर अपने गांव को देखा। गांव, घर, खेत, खलियान और वहां के कितने अपने थे। अकाल के सन्नाटे में सब खो गया। कौन कहां और किधर गया था किसी को कोई पता नहीं कब लौटेगा, लौटेगा भी या नहीं, यह भी नहीं जानता कोई। वह स्वयं भी नहीं। उसका मनभर आया। आँखो से टप–टप आँसू गिरने लगे। उसने झुककर श्रद्धा से माटी को नमन किया और माथै से लगाया। फिर अनजानी राह पर आगे बढ़ चली।''[6]

''कमला जड़ सी हो गई। अब तक जिसे वह झूठ समझ रही थी, वह सच ही था। सोचने लगी, तो क्या उसका विवाह हो चुका ? कुछ भी याद नहीं उसे। वह तो अपने मन में शादी होने के लिए नित नई कल्पनाएं और सपने संजोने लगी थी। दुल्हन बनेगी, बारात के साथ दुल्हा द्वार पर आयेगा। उसके सारे अरमान उस एक ही क्षण में धूमिल हो गए थे।''[7]

''वह सोंचने लगी, उसका फिर इन्टरव्यू लिया जाएगा, अनर्गल सवाल पूछे जायेगे। बात–बात पर शर्मिन्दा किया जाएगा। नीचा दिखाने की चेष्टा की जाएगी। ऐसा तो पहले भी कई दफा हो चुका है, किन्तु परिणाम की जो घोषणा होगी, वह नितांत निराशाजनक ही होगी। कैसा अजीब साक्षात्कार होता है यह। इसी जवाब देने के बाद भी दहेज के अभाव में नतीजा अटक जाता है और वह माता–पिता का मन रखने के लिए बेमन से तैयार होने लगी।''[8]

हीन–भावना

मानव जीवन संघर्ष का प्रतिरूप है। संघर्ष के बिना जीवन सार्थकता को प्राप्त नहीं होता। परन्तु कई बार संघर्ष करते–करते असफल हो जाता है और उसमें हीन भावना आ जाती है। जिसके कारण वह अनेक व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है। वह अपने आप को तुच्छ समझने लगता है।

'तृष्णा' कहानी में गिरिजा प्रसाद को इस समस्या से ग्रस्त दिखाया है – ''गिरिजा प्रसाद की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। यह आदर्श जानता था। यही एक वजह थे, जिसके कारण समाज

में उन्हें सम्मान और प्रतिष्ठा नहीं मिल पाई थी। इस युग में सम्मान और प्रतिष्ठा का आकलन पैसे से किया जाता है।''[9]

वस्तुतः कहा जाता है कि आत्महीनता या हीन भावना मनुष्य में दुखदायी विकृति है। आज मनुष्य इस भाग–दौड़ की दुनिया में अनेक व्याधियों का शिकार हो गया है। जिससे जीवन का सुख–चैन समाप्त हो गया है।

पारिवारिक मूलक यथार्थ

परिवार मानव समाज की एक अत्यंत महत्वपूर्ण संस्था है। मनुष्य जन्म लेते ही परिवार नामक संस्था का सदस्य बन जाता है। यह एक ऐसी संस्था है, जो संसार के प्रत्येक भाग में पाई जाती है। परिवार में मनुष्य अपनत्व पाता है, ममत्व पाता है, जहां उसे ऐसा अनुभव होता है कि उसकी किसी को आवश्यकता है, वह किसी के लिए व्यक्ति और परिवार एक–दूसरे से इतने घनिष्ठ रूप में सम्बन्ध है कि व्यक्ति या परिवार पर पृथक रूप में विचार करना असम्भव सा लगता है। वास्तव में व्यक्तिहीन परिवार और परिवार से सम्बन्ध व्यक्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। व्यक्ति और समाज एक–दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति परिवार में रहकर संस्कार ग्रहण करता है तथा एक–दूसरे के दुःख–सुख में सहभागी बनना सीखता है। परिवार के द्वारा ही मनुष्य की अवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

व्यक्ति के जीवन का पहला अध्याय परिवार से शुरू होता है और अन्तिम अध्याय की समाप्ति भी परिवार से ही होती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति जिस परिवार में जन्म ले, व्यस्क अवस्था में भी उसी का सदस्य रहे। प्रायः देखने में यह आता है कि व्यक्ति व्यस्क होने पर अपने पिता के परिवार से अलग, अपने परिवार का निर्माण करता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि पहले परिवार से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। समाजशास्त्रियों ने दो प्रकार की परिवार व्यवस्था स्वीकार की है। एक संयुक्त परिवार व्यवस्था और दूसरी असम्मिलत परिवार अथवा एकल परिवार राठौड़ जी ने अपनी कहानियाँ में इन दोनों ही प्रकार के परिवारों का चित्रण किया है। संयुक्त परिवार व्यवस्था आधुनिक भारत में प्रचलित है, परन्तु उसका स्वरूप प्राचीन भारत की संयुक्त परिवार व्यवस्था से थोड़ा भिन्न है। लेकिन पूर्णतः नष्ट नहीं हो पाया है। संयुक्त परिवार में माता–पिता, पुत्र और उसके बच्चे शामिल होते हैं, जो श्राद्ध, धर्म, कर्म, एक साथ करते हैं। 'शब्द की पीड़ा' श्यामबिहारी का परिवार एक संयुक्त परिवार का यथार्थ चित्रण है।

समय के परिवर्तन के साथ युग की मान्यताओं में भी परिवर्तन आने लगा है। जहां संयुक्त परिवार में बीस–बीस आदमी साथ रहे लेते थे, वहां कुछ व्यक्ति का साथ रहना दूभर हो गया है। औद्योगिक सभ्यता एवं संस्कृति का सशक्त प्रभाव पारिवारिक सम्बन्धों पर देखा जा सकता है। पहले परिवार में जो स्नेह, आदर, सहयोग एवं कृतज्ञता का भाव होता था आज वह लुप्त होता जा रहा है। कथाकार ने जहाँ अपनी कहानियों में संयुक्त परिवार का यथार्थ चित्रण किया है, वहीं एकल अथवा असम्मिलित परिवार का यथार्थ चित्रण भी किया है।

परिवार के सदस्यों के बीच पारिवारिक सम्बन्धों का मूल्यांकन व्यक्तिगत स्वार्थ उपयोगिता के आधार पर किया जा रहा है। अतिश्य बौद्विकता स्वार्थ उपयोगिता के आधार पर किया जा रहा है। अतिश्य बौद्विकता की ऑच ने भावना के पुष्प को जला डाला है। व्यक्ति के द्वारा अपने परिवार के सदस्यों को विषम परिस्थितियों में अनभिज्ञता एवं अनजानापन प्रकट करना एक फैशन बन गया है। ऐसा करते समय व्यक्ति को लज्जा की नहीं, गौरव की अनुभूति होती है। गांव की मिट्टी को छोड़कर व्यक्ति नगरों की तंग गलियों में क्या आया कि उसका हृदय भी संकुचित हो गया है। इसमें व्यक्ति का भी दोष नहीं है, क्योंकि वह तो औद्योगिक सभ्यता की मशीन का एक पूर्जा मात्र है। आज की औद्योगिक सभ्यता, पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति के प्रभाव एवं प्रसार ने भारत से उस वातावरण को ही चुकता कर दिया है जो कि सम्मिलित परिवार के लिए अनिवार्य होता है। इसलिए सम्मिलित परिवारों का स्थान एकल परिवार लेते जा रहे हैं। 'शेषयात्रा' कहानी संग्रह की लगभग कहानियों में एकल परिवार का चित्रण ही दिखाई देता है। 'शेषयात्रा' 'दरख्तों के साये', 'समहार', 'जुआरी' आदि सभी कहानियों में हमें एकल परिवार का ही यथार्थ चित्रण है।

संयुक्त परिवार और एकल परिवार के अतिरिक्त राठौड़ जी ने अपनी कहानियों में ग्रामीण परिवार और नगरीय परिवार का भी चित्रण किया है। ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से भारत के ग्रामीण समाज का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। ग्रामीण समाज का आरम्भ वैदिक आर्यों के काल से माना जाता है। स्वरूप की दृष्टि से भारतीय ग्रामों में अनेक प्रकार के परिवार देखने को मिलते हैं। जैसे – पितृसत्तात्मक परिवार, संयुक्त परिवार, विस्तृत परिवार। भारतीय ग्रामीण परिवार पितृसत्तात्मक परिवार है। जिसमें वंश परम्परा का निर्धारण पिता की ओर से पितृसत्तात्मक होने के साथ–साथ भारतीय ग्रामीण परिवार का स्वरूप मुख्य रूप से संयुक्त परिवार का है।

राठौड़ जी ने अपने कथा संग्रह 'शेषयात्रा' में ग्रामीण परिवेश का चित्रण भी किया है। 'कॉकड़' पर आकर गंगा ने निगाह भर अपने गांव को देखा। गांव, घर, खेत, खलियान और वहां के लोग कितने अपने थे। अकाल के सन्नाटे में सब खो गया। कौन कहां और किधर गया था, किसी का कोई पता नहीं! कब लौटेगा, लौटेगा भी या नहीं, यह भी नहीं जानता कोई ! वह स्वयं भी नहीं। उसका मन भर आया। आँखों से टप–टप आँसू गिरने लगे। उसने झुक कर श्रद्धा से माटी को नमन् किया और माथे से लगाया। फिर अनजानी राह पर बढ़ चली।''[10]

''कर्त्तव्य' कहानी में भी ग्रामीण जीवन की सादगी का यथार्थ चित्रण किया है। मंगल इसका ज्वलंत उदाहरण है। मंगल एक ग्रामीण युवक है जो अनपढ़ है लेकिन फिर भी वह एक संस्कारी युवक के रूप में हमारे सामने आता है।

'रिश्तों के अनुबंध', 'एक नई राह' और 'यादों के आभास' कहानियों में जहाँ ग्रामीण परिवार की अच्छाईयां चित्रित की हैं, वही ग्रामीण लोगों पर भी पाश्चात्य शिक्षा व औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव पड़ रहा है और उनमें विखराव आ रहा है। राठौड़ जी ने इस बिखराव को अपनी कहानियों में बखूबी दिखाया है।

ग्रामीण परिवारों के चित्रण के साथ–साथ राठौड़ जी ने नागरिक परिवारों का चित्रण भी किया है। उन्होंने नगरीय परिवारों में व्याप्त संकीर्णता, कटुता का यथार्थ चित्रण अपनी कहानियों में करवाया है। उन्होंने 'यादों का आभास' कहानी में पंकज के पिता के माध्यम से ग्रामीण और शहरी परिवार एवं जीवन के अन्तर को स्पष्ट किया है– ''गाँव का निश्चल व्यवहार, छल–छद्म रहित सादा जीवन, शुद्ध और शान्त वातावरण है, यहां। सद्भावना और भाई–चारे की मानसिकता है यहां के लोगों में। सुख–दुःख के साथ है यहां के लोग। यह सब शहर में कहॉ ? वहॉ तो पड़ोस–पड़ोसी को नहीं पहचानता। वहॉ एक घर में मातम् मनाया जा रहा होता है, तो दूसरे घर में टेप की धुन पर डिस्को होता रहता है।''[11]

नागरीय परिवारों पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा है। जिससे कुछ क्षेत्रों में वह आगे बढ़ा है तो उसमें कुछ बुराईयां भी आई हैं।

पारिवारिक विघटन

परिवार एक सामाजिक समूह होता है, जिसके सदस्य रक्त सम्बन्धों के आधार पर परस्पर स्नेह एवं प्रीति की डोरी से बंधे होते हैं। परिवार की सत्ता को बनाए रखने के लिए पति–पत्नी के आपसी सम्बन्धों में तनाव आ जाता है तो परिवार विघटन शुरू हो जाता है। अतः पारिवारिक विघटन का अर्थ है –''पारिवारिक संगठन का टूट जाना। परिवार के सदस्यों के बीच जो स्नेह प्रेम,

सहयोग और सद्भाव रहता है, जिन तन्तुओं के सहारे परिवार एक इकाई के रूप में बंधा रहता है, उन तन्तुओं का टूट जाना ही पारिवारिक विघटन है।''[12]

निष्कर्ष

पारिवारिक विघटन तभी होता है, जब उसके सदस्यों में वफादारी कम हो जाए। पारिवारिक सदस्य परस्पर एक विशेष प्रकार की भावना से बंधे होते हैं, जो अदृश्य होती है। जब सदस्यों में परस्पर श्रद्धा एवं स्नेह भाव समाप्त हो जाता है, तो परिवार का विघटन सम्भाव्य हो जाता है। 'विस्तृत अर्थो में पारिवारिक विघटन सदस्यों को एक सूत्र में बांधने वाली क्रियाओं का कमजोर हो जाना, टूट जाना, उसमें असांमजस्य की स्थिति है।''[13]

एक प्रकार से परिवारों में किसी भी प्रकार की अव्यवस्था ही पारिवारिक विघटन है।

सन्दर्भ

1. राठौड़ प्रहलाद सिंह (2002) समहार, शेषयात्रा, साहित्यकार प्रकाशक जयपुर, पृ0 60
2. वही, पृ0 60
3. राठौड़ प्रहलाद सिंह (2002) जुआरी, शेषयात्रा, साहित्यकार प्रकाशक जयपुर, पृ0 93
4. राठौड़ प्रहलाद सिंह (2002) यादों का आभास, शेषयात्रा, पृ0 104
5. राठौड़ प्रहलाद सिंह (2002) शब्दों की पीड़ा शेषयात्रा, पृ0 47
6. राठौड़ प्रहलाद सिंह (2002) अकाल का सन्नाटा शेषयात्रा – पृ0 26
7. राठौड़ प्रहलाद सिंह (2002) एक नई राह, शेषयात्रा–पृ0 69
8. राठौड़ प्रहलाद सिंह (2002) अन्तर्रचना पृ0 77
9. राठौड़ प्रहलाद सिंह (2002) तृष्णा पृ0 64
10. राठौड़ प्रहलाद सिंह (2002) अकाल का सन्नाटा पृ0 26
11. राठौड़ प्रहलाद सिंह (2002) यादों के आभास पृ0 103–104
12. भट्ट श्री कृष्ण दत्त (2000) सामाजिक विघटन और भारत, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना पृ0 355
13. गुप्ता डॉ0 कमला (1995) हिन्दी उपन्यासों में साम्यवाद, राधाकृष्ण प्रकाशक दिल्ली पृ0 305.